[2020] 9 एस.सी.आर. 504

ब्रह्मपाल @ सम्मय और अन्य

बनाम

राष्ट्रीय बीमा कंपनी

(सिविल अपील संख्या 2926/2020)

07 अगस्त, 2020

[एन. वी. रमना, एस. अब्दुल नजीर और सूर्य कांत न्यायमूर्तिगण]

मोटर वाहन अधिनियम, 1988:

धारा 173 - मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के आदेश के खिलाफ अपील दायर करने में 45 दिनों की देरी - देरी की माफी के लिए आवेदन और उच्च न्यायालय द्वारा खारिज की गई अपील - सुप्रीम कोर्ट में अपील – अभिनिर्धारित : धारा 173 अपील दायर करने के लिए सीमा अवधि प्रदान करता है - प्रावधान न्यायालय को अपील दायर करने में देरी को माफ करने के लिए पर्याप्त विवेकाधीन शक्तियां भी देता है यदि वह संतुष्ट है कि "पर्याप्त कारण" मौजूद है - प्रावधान एक लाभकारी कानून "पर्याप्त कारण" होने के कारण इसे पूरा करने के लिए उदार व्याख्या दी जानी चाहिए अधिनियम का उद्देश्य - वर्तमान मामले में 45 दिनों की देरी को उचित रूप से समझाया गया है - आक्षेपित आदेश में अपनाया गया सख्त दृष्टिकोण अति तकनीकी था और इसलिए टिकाऊ नहीं है - देरी माफ की जाती है - मामले को योग्यता - सीमा - देरी के आधार पर निर्णय लेने के लिए उच्च न्यायालय में भेजा गया है।

विलम्बः

विलम्ब की निंदा - मानदंडों को अपनाया जाना है – अभिनिर्धारित देरी को माफ करने के लिए कोई सीधा सूत्र नहीं है-अदालतों को देरी को माफ करने पर विचार करते समय मामले के पूरे तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ पक्षों के आचरण को ध्यान में रखना आवश्यक है - पक्षों के मूल अधिकारों को ध्यान में रखते हुए, तकनीकीताओं पर अनुचित जोर नहीं दिया जाना चाहिए और प्रावधानों को वाणिज्यिक दावों की तुलना में सख्ती से नहीं देखा जा सकता है।

विधानों की व्याख्याः

लाभकारी विधान - की व्याख्या - अभिनिर्धारित : लाभकारी विधान की व्याख्या उपचारात्मक होनी चाहिए और उस उद्देश्य को आगे बढ़ाने में होनी चाहिए जिसे कानून पूरा करना चाहता है।

शब्द और वाक्यांशः

अभिव्यक्ति "हो सकता है" और "पर्याप्त कारण" - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 173 के संदर्भ में, की व्याख्या।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित : 1. मोटर वाहन अधिनियम, 1988 का अध्याय 12 एक लाभकारी विधान है जिसका उद्देश्य सड़क दुर्घटनाओं में प्रभावित पीड़ितों के अधिकारों की रक्षा करना है। इसके अलावा, अधिनियम अपने आप में एक स्व-निहित संहिता है जो दावा दायर करने, अधिनिर्णय पारित करने और अपील को प्राथमिकता देने के लिए प्रक्रियाएं प्रदान करता है। यहां तक कि, उपचारों को प्राथमिकता देने की सीमाएं कोड में ही निहित हैं। एक लाभकारी विधान की व्याख्या उपचारात्मक होनी चाहिए और उस उद्देश्य को आगे बढ़ाने में होनी चाहिए जिसे कानून पूरा करना चाहता है। [अनुच्छेद 8 और 9]

बॉम्बे आनंद भवन रेस्तरां बनाम उप निदेशक, कर्मचारी राज्य बीमा निगम। **(2009) 9 एससीसी 61 : [2009] 13 एससीआर 1139**; विमला देवी बनाम नेशनलइंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, **(2019) 2 एससीसी 186: [2018] 13 एससीआर 753 - पर भरोसा किया गया।**

2.1 अधिनियम की धारा 173 में यह उपबंध है कि अधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय से व्यथित कोई भी व्यक्ति नब्बे दिनों के भीतर उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता है। हालांकि, दूसरे परन्तुक में कहा गया है कि उच्च न्यायालय नब्बे दिनों की समाप्ति के बाद भी ऐसी अपील पर विचार कर सकता है, यदि अपीलार्थी न्यायालय को संतुष्ट करता है कि देरी के पीछे पर्याप्त कारण मौजूद है। [अनुच्छेद 12]

2.2 सामान्यतः, "हो सकता है" शब्द मजबूरी का शब्द नहीं है। यह एक सक्षम करने वाला शब्द है और यह केवल क्षमता, शक्ति या अधिकार प्रदान करता है और विवेक का तात्पर्य है।"इसका उपयोग कानून में यह इंगित करने के लिए किया जाता है कि कुछ ऐसा किया जा सकता है जो इससे पहले नहीं किया जा सकता था।" [अनुच्छेद 13]

चिन्नामार्काथियन उर्फ मुथु गौंडर बनाम अय्यवू उर्फ पेरियाना गौंडर **(1982) 1 एससीसी 159: [1982] 2 एससीआर 146**; मदनलाल फकीरचंद दुधेडिया बनाम श्री चांगदेव शुगर मिल्स लिमिटेड **[1962] 3 सप्लीमेंट। एससीआर 973**-पर भरोसा किया गया।

न्यायमूर्ति जी. पी. सिंह द्वारा वैधानिक व्याख्या के सिद्धांत, **14 वां संस्करण – निर्दिष्ट किया गया**।

2.3 विधायिका ने अधिनियम की धारा 173 में " हो सकता है " शब्द का प्रयोग करके न्यायालय को नब्बे दिनों की अवधि से परे भी अपीलों को ग्रहण करने के लिए पर्याप्त विवेकाधीन शक्तियां प्रदान कीं। ऐसी विवेकाधीन शक्ति न्यायालयों को पीड़ितों और उनके आश्रितों की के अधिकारों को लागू करने के लिए प्रदान जाती है। विधायिका का इरादा था कि न्यायालयों के पास ऐसी शक्ति होनी चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि मूल न्याय तकनीकीताओं से प्रभावित न हो। यदि विशिष्ट शर्तें जिनमें शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, वे भी क़ानून में प्रदान की गई हैं, तो न्यायालय को क़ानून द्वारा निर्दिष्ट तरीके से उपरोक्त विवेकाधिकार का प्रयोग करना चाहिए। धारा 173 के दूसरे परन्तुक में यह कहा गया है कि न्यायालय को विलंब को केवल तभी क्षमा करने की शक्ति है जब वह संतुष्ट हो कि "पर्याप्त कारण" मौजूद है। [अनुच्छेद 14, 16 और 17]

आधिकारिक परिसमापक बनाम धरती धन (पी) **लिमिटेड (1977) 2 एससीसी 166: [1977] 2 एससीआर 964-पर भरोसा किया गया।**

भैय्या पुंजलाल भगवानदीन बनाम दवे भागवतप्रसाद प्रभुपाद **एआईआर 1963 एससी 120 : [1963] 3 एससीआर 312**; श्री प्रकाश चंद अग्रवाल बनाम हिंदुस्तान स्टील लिमिटेड**, (1970) 2 एससीसी 806: [1969] 2 एससीआर 675 - संदर्भित किया गया।**

2.4 यद्यपि सीमा अधिनियम, 1963 के प्रावधान मोटर वाहन अधिनियम के तहत दावों पर निर्णय लेते समय लागू नहीं होते हैं, लेकिन सीमा अधिनियम के तहत "पर्याप्त कारण" की व्याख्या करते समय भी न्यायालयों ने उदार व्याख्या की है। [अनुच्छेद 18]

पेरुमन भगवती देवास्वोम, पेरिनाडु विलेज बनाम भार्गवी अम्मा (मृत) एलआर द्वारा, : **[2008] 11 एससीआर 321**; बलवंत सिंह (मृत) बनाम जगदीश सिंह, **(2010) 8 एससीसी 685 : [2010] 8 एससीआर 597**; मणिबेनदेवराज शाह बनाम बृहन्मुंबई नगर निगम **(2012) 5 एससीसी 157 - पर भरोसा किया गया।**

2.5 इसलिए, उपरोक्त उपबंध एक लाभकारी विधान होने के कारण, अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उदार व्याख्या दी जानी चाहिए। पक्षों के मूल अधिकारों को ध्यान में रखते हुए, तकनीकीताओं पर अनुचित जोर नहीं दिया जाना चाहिए। ऐसे मामलों में फाइलिंग और रिफाइलिंग में देरी को मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 या वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 के तहत वाणिज्यिक दावों की तुलना में सख्ती से नहीं देखा जा सकता है। [अनुच्छेद 22]

पी राधा बाई बनाम पी अशोक कुमार **(2019) 13 एससीसी 445 : [2018] 12 एससीआर 143 - पर भरोसा किया गया।**

2.6 मोटर वाहन अधिनियम का विधायी आशय पीड़ितों के लिए समुचित प्रतिकर प्रदान करना और उनके मूल अधिकारों की रक्षा करना है, उसी के अनुसरण में, व्याख्या वाणिज्यिक दावों के रूप में कठोर नहीं होनी चाहिए। **[अनुच्छेद 22]**

2.7 निस्संदेह, कानून ने न्यायालयों को देरी को माफ करने के लिए विवेकाधीन शक्तियां प्रदान की हैं, हालांकि साथ ही यह पक्ष पर यह औचित्य साबित करने का दायित्व भी रखता है कि उन्हें "पर्याप्त कारण" के अस्तित्व के कारण इसका पालन करने से रोका गया था। यद्यपि न्यायालयों के लिए विलंब को माफ करने के लिए कोई स्ट्रैट जैकेट फॉर्मूला मौजूद नहीं है, लेकिन न्यायालयों को न केवल मामले के पूरे तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए, बल्कि पक्षों के आचरण को भी ध्यान में रखना चाहिए। तर्कसंगतता की अवधारणा यह निर्धारित करती है कि न्यायालयों को उदार दृष्टिकोण अपनाते हुए भी दोनों पक्षों के अधिकारों और दायित्वों पर विचार करना चाहिए। जब एक पक्ष की घोर लापरवाही और दूसरे के अभावपूर्ण रवैये के कारण एक पक्ष के पक्ष में कोई अधिकार अर्जित हो जाता है, तो यह न्यायालय उपरोक्त विवेकाधीन राहत का प्रयोग करने से बचेगा। **[अनुच्छेद 23]**

3. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, अपीलकर्ताओं द्वारा **45** दिनों की देरी को उचित रूप से समझाया गया है, जो अपीलकर्ता नंबर **1** की पत्नी की बीमारी के कारण था। केवल अल्प अवधि की देरी के आधार पर अपील को खारिज करना उच्च न्यायालय के लिए उचित नहीं था, खासकर मोटर दुर्घटना दावों में मृत्यु से जुड़े मामलों में। इसके अलावा, वर्तमान मामले में अपीलार्थियों के खिलाफ नब्बे दिनों की समाप्ति के बाद अपील दायर करने के लिए कोई दुर्भावनापूर्ण आरोप नहीं लगाया जा सकता है। इसलिए, विवादित आदेश में लिया गया सख्त दृष्टिकोण अति-तकनीकी है और कानून की नजर में इसे बनाए नहीं रखा जा सकता है। **[अनुच्छेद 24]**

4. चूंकि मामले के गुण-दोष पर निर्णय नहीं हुआ है, इसलिए मामले को गुण-दोष पर नए सिरे से विचार करने के लिए उच्च न्यायालय को भेज दिया जाता है। **[अनुच्छेद 25]**

<u>निर्णय विधि संदर्भ</u>

2009] 13 एस.सी.आर. **1139**	पर निर्भर था ।	**अनुच्छेद 9**
[2018] 13 एस.सी.आर. **753**	पर निर्भर था ।	**अनुच्छेद 10**
[1982] 2 एस.सी.आर. **146**	पर निर्भर था ।	**अनुच्छेद 13**
[1962] 3 पूरक एस.सी.आर. **973**	पर निर्भर था ।	**अनुच्छेद 13**
[1977] 2 एस.सी.आर. **964**	पर निर्भर था ।	**अनुच्छेद 15**
[1963] एस.सी.आर. **312**	को संदर्भित किया।	**अनुच्छेद 16**
[1969] 2 एस.सी.आर. **675**	को संदर्भित।	**अनुच्छेद 16**

[2008] 11 एस.सी.आर. 1	**पर निर्भर था।**	**अनुच्छेद 18**
[2010] 8 एस.सी.आर. 597	**पर निर्भर था।**	**अनुच्छेद 19**
(2012) 5 एस.सी.सी. 157	**पर निर्भर था।**	**अनुच्छेद 21**
[2018] 12 एस.सी.आर. 143	**पर निर्भर था।**	**अनुच्छेद 22**

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार : सिविल अपील संख्या 2926/2020।

ए.ओ संख्या 266/2014 में उत्तराखंड उच्च न्यायालय, नैनीताल के दिनांक 17.10.2016 के निर्णय और आदेश से।

यूनुस मलिक, अनीश माहेश्वरी, अमन मलिक, समीर मलिक, सुश्री मीनाक्षी मिधा, कपिल मिधा, सुश्री प्रीतिका जुनेजा, चंदर शेखर अशरी, उपस्थित दलों के लिए अधिवक्ता।

न्यायालय का निर्णय सुनाया गया।

एन. वी. रमना, न्यायमूर्ति

1. विलंब क्षमा किया गया।

2. अनुमति प्रदान की गई।

3. यह अपील उत्तराखंड उच्च न्यायालय, नैनीताल द्वारा ए.ओ संख्या 266/2014 में पारित दिनांक 17.10.2016 के आक्षेपित आदेश से उत्पन्न हुई है, जिसमें उच्च न्यायालय ने 45 दिनों की देरी के आधार पर अपील को खारिज कर दिया था।

4. संक्षेप में इस अपील को जन्म देने वाले तथ्य इस प्रकार हैं : 26 वर्षीय मृतक 15.04.2011 को एक दुर्घटना का शिकार हो गया, क्योंकि उसकी बाइक बिना किसी बैकलाइट के संकेत के सड़क पर लापरवाही से खड़े ट्रक से टकरा गई। नतीजतन, अस्पताल ले जाते समय उन्होंने दम तोड़ दिया। अपीलार्थियों (मृतक के माता-पिता) ने मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के समक्ष एक याचिका दायर कर 10 लाख रुपये के मुआवजे की मांग की। आदेश 07.02.2014 के माध्यम से, अधिकरण ने 6% प्रति वर्ष के ब्याज के साथ मुआवजे के रूप में 2.24 लाख रुपये की कुल राशि का अधिनिर्णय दिया। इससे व्यथित होकर, अपीलकर्ताओं ने मुआवजे में वृद्धि के लिए उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। यह ध्यान देने योग्य है कि उच्च न्यायालय के समक्ष उपरोक्त अपील 45 दिनों की देरी से दायर की गई थी। उसी को स्पष्ट करने के लिए, यहां अपीलकर्ताओं ने सीएलएमए 6569/2014 के रूप में एक आवेदन दायर किया, जिसमें इस आधार पर देरी की माफी की मांग की गई कि उनकी पत्नी बीमार थी, जिसने उन्हें समय पर अपील करने से रोक दिया था।

5. दिनांक 17.10.2016 के आक्षेपित आदेश द्वारा, उच्च न्यायालय ने उपरोक्त विलम्ब क्षमा आवेदन को खारिज कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप अपील भी खारिज हो गई। उपर्युक्त आदेश से व्यथित होकर, अपीलकर्ताओं ने विशेष अनुमति याचिका के माध्यम से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

6. अपीलार्थियों की ओर से वकील ने प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय ने देरी को माफ करने के लिए आवेदन को खारिज करने में अनुचित तरीके से काम किया है। इसके विपरीत, प्रत्यर्थी की ओर से वकील ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का समर्थन किया।

7. दोनों पक्षों के वकील को सुनने के बाद, इस अपील में विचार के लिए जो संक्षिप्त प्रश्न उत्पन्न होता है, वह यह है कि क्या उच्च न्यायालय ने 45 दिनों के लिए विलंब माफी आवेदन को खारिज करने में गलती की है? यह प्रश्न मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 173 (इसके बाद "अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की व्याख्या को बदल देता है।

8. सबसे पहले, हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि अधिनियम का अध्याय 12 एक लाभकारी विधान है जिसका उद्देश्य सड़क दुर्घटनाओं में प्रभावित पीड़ितों के अधिकारों की रक्षा करना है। इसके अलावा, अधिनियम अपने आप में एक स्व-निहित संहिता है जो दावा दायर करने, अधिनिर्णय पारित करने और अपील को प्राथमिकता देने के लिए प्रक्रियाएं प्रदान करता है। यहां तक कि, उपचारों को प्राथमिकता देने की सीमाएं कोड में ही निहित हैं।

9. एक लाभकारी विधान की व्याख्या उपचारात्मक होनी चाहिए और उस उद्देश्य को आगे बढ़ाने में होनी चाहिए जिसे कानून पूरा करना चाहता है। उपरोक्त दृष्टिकोण को इस न्यायालय द्वारा कई अवसरों पर दोहराया गया है जिसमें इस न्यायालय ने क़ानून के प्रावधानों की व्याख्या करते समय विधायी इरादे को स्वीकार करने के महत्व पर प्रकाश डाला है। ***बॉम्बे आनंद भवन रेस्तरां बनाम उप निदेशक, कर्मचारी राज्य बीमा निगम,*** (2009) 9 एस. सी. सी. 61 के मामले में इस न्यायालय ने कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि यह एक लाभकारी विधान होने के कारण एक उदार निर्माण प्राप्त करना चाहिए ताकि इसके उद्देश्यों को बढ़ावा दिया जा सके। इस न्यायालय ने इसमें अभिनिर्धारित कियाः

"20. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम एक लाभकारी कानून है। अधिनियम का मुख्य उद्देश्य जैसा कि प्रस्तावना से पता चलता है, बीमारी, मातृत्व और रोजगार की चोट के मामले में कारखाने के कर्मचारियों को कुछ लाभ प्रदान करना और उनके संबंध में कुछ अन्य मामलों के लिए प्रावधान करना है**। कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम एक सामाजिक सुरक्षा कानून है और सामाजिक कानून की व्याख्या करने के सिद्धांत कराधान कानून की व्याख्या के सिद्धांतों से भिन्न हैं। अदालतों को ऐसे किसी भी हथकंडे का सामना नहीं करना चाहिए जो सामाजिक कानून के प्रावधानों को विफल कर देगा और अदालतों को, यदि आवश्यक हो, उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अधिनियम की भाषा पर दबाव भी डालना चाहिए, जो विधायिका ने इस कानून को क़ानून की किताब में रखने में किया था। इसलिए, अधिनियम को एक उदार निर्माण प्राप्त होना चाहिए ताकि इसके उद्देश्यों को बढ़ावा दिया जा सके।**

10 . इसी प्रकार, ***विमला देवी बनाम राष्ट्रीय बीमा कंपनी लिमिटेड,*** (2019) 2 एस.सी.सी. 186 के मामले में इस न्यायालय ने अधिनियम के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए अभिनिर्धारितकिया कि प्रक्रियाओं के सख्त अनुपालन में ढील दी जा सकती है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि पीड़ितों को उचित मुआवजा मिले। इस न्यायालय ने इसमें टिप्पणी कीः

> "15. शुरुआत में, हम दोहरा सकते हैं जैसा कि इस न्यायालय द्वारा मामलों की एक श्रृंखला में लगातार कहा गया है कि अधिनियम मोटर दुर्घटना के पीड़ितों को सांत्वना देने के लिए अधिनियमित कानून का एक लाभकारी टुकड़ा है जो शारीरिक रूप से घायल होते हैं या असामयिक रूप से मर जाते हैं। **अधिनियम को इस तरह से तैयार किया गया है, जो पीड़ितों को कानून में प्रदान किए गए सख्त अनुपालन को सुनिश्चित करने से राहत देता है, जो अन्यथा दुर्घटना में उनके द्वारा किए गए नुकसान के मुआवजे का दावा करने के लिए अधिनियम के तहत दायर दावा याचिका पर मुकदमा चलाते समय मुकदमों और अन्य कार्यवाही पर लागू होते हैं।**

11. कानून की सामान्य प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, हमारे लिए अधिनियम की धारा 173 पर एक नजर डालना उचित है जो इस प्रकार है:

> **173. अपील** - (1) उपधारा (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए दावा अधिकरण के अधिनिर्णय से व्यथित कोई व्यक्ति, अधिनिर्णय की तारीख से नब्बे दिनों के भीतर, उच्च न्यायालय में अपील कर सकेगाः
>
> बशर्ते कि उस व्यक्ति की कोई अपील, जिससे ऐसे अधिनिर्णय के संदर्भ में किसी राशि का भुगतान करने की अपेक्षा की जाती है, उच्च न्यायालय द्वारा तब तक स्वीकार नहीं की जाएगी जब तक कि उसने इसके साथ पच्चीस हजार रुपये या इस प्रकार दी गई राशि का पचास प्रतिशत, जो भी कम हो, उच्च न्यायालय द्वारा निर्देशित तरीके से जमा नहीं किया हैः
>
> **बशर्ते कि उच्च न्यायालय नब्बे दिनों की उक्त अवधि की समाप्ति के बाद <u>अपील पर विचार कर सकता है</u>, यदि यह संतुष्ट हो जाता है कि अपीलार्थी को समय पर अपील करने से <u>पर्याप्त कारण</u> से रोका गया था।**
>
> (2) दावा अधिकरण के किसी अधिनिर्णय के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जाएगी, यदि अपील में विवाद की राशि दस हजार रुपये से कम है।

12. धारा 173 में यह उपबंध है कि अधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय से व्यथित कोई भी व्यक्ति नब्बे दिनों के भीतर उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता है। हालांकि, दूसरे परन्तुक में कहा गया है कि उच्च न्यायालय नब्बे दिनों की समाप्ति के बाद भी ऐसी अपील पर विचार कर सकता है, यदि अपीलार्थी न्यायालय को संतुष्ट करता है कि देरी के पीछे पर्याप्त कारण मौजूद है।

13. आमतौर पर, शब्द "हो सकता है" मजबूरी[1] का शब्द नहीं है. यह एक सक्षम शब्द है और यह केवल क्षमता, शक्ति या अधिकार प्रदान करता है और विवेक[2] का संकेत देता है।"इसका उपयोग कानून में यह इंगित करने के लिए किया जाता है कि कुछ ऐसा किया जा सकता है जो इससे पहले नहीं किया जा सकता था।"[3]

14. विधायिका ने अधिनियम की धारा 173 में "हो सकता है" शब्द का उपयोग करके, नब्बे दिनों की अवधि के बाद भी अपील पर विचार करने के लिए न्यायालय को पर्याप्त विवेकाधीन शक्तियां प्रदान कीं। हमारे सामने प्रासंगिक मुद्दा इस बात से संबंधित है कि ऐसी विवेकाधीन शक्ति की सीमा क्या है।

15. "हो सकता है" शब्द के उपयोग द्वारा शक्ति प्रदान करने की सीमा को समझने के लिए, हम **आधिकारिक परिसमापक बनाम धरती धन (पी.) लिमिटेड**, (1977) 2 एससीसी 166 का अवलोकन कर सकते हैं, जिसमें इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित था:

> "10. ऊपर निर्धारित सिद्धांत का इस न्यायालय द्वारा लगातार पालन किया गया है जब भी यह तर्क दिया गया है कि "हो सकता है" शब्द अपने साथ किसी विशेष तरीके या निर्देश में किसी शक्ति का प्रयोग करने का दायित्व रखता है। **ऐसे मामले में, यह हमेशा शक्ति का उद्देश्य होता है जिसकी जांच की जानी चाहिए ताकि शक्ति प्राप्तकर्ता को दिए गए विवेकाधिकार का दायरा निर्धारित किया जा सके। यदि वे शर्तें जिनमें विशेष मामलों में शक्ति का प्रयोग किया जाना है, एक कानून द्वारा भी निर्दिष्ट की जाती हैं, तो उन शर्तों के पूरा होने पर, प्रदत्त शक्ति उस तरीके से इसका प्रयोग करने के कर्तव्य के साथ संलग्न हो जाती है।**

16. इस न्यायालय ने सबसे पहले यह अभिनिर्धारित किया है कि न्यायालय को दिए गए ऐसे विवेकाधिकार के दायरे के निर्धारण के लिए ऐसी शक्ति प्रदान करने के उद्देश्य की जांच की जानी चाहिए। [संदर्भ लें **भैय्या पुंजलाल भगवानदीन बनाम देव भागवत प्रसाद प्रभुप्रसाद**, ए.आई.आर. 1963 ए.स.120; **श्री प्रकाश चंद अग्रवाल बनाम हिंदुस्तान स्टील लिमिटेड,** (1970) 2 एस.सी.सी. 806]। अधिनियम के उद्देश्य के हमारे विश्लेषण से पता चलता है कि ऐसी विवेकाधीन शक्ति न्यायालयों को पीड़ितों और उनके आश्रितों के अधिकारों को लागू करने के लिए प्रदान की जाती है। विधायिका का इरादा था कि न्यायालयों के पास ऐसी शक्ति होनी चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि मूल न्याय तकनीकीताओं से प्रभावित न हो।

17. दूसरा, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि विशिष्ट शर्तें जिनमें शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, वे भी क़ानून में प्रदान की गई हैं, तो न्यायालय को क़ानून द्वारा निर्दिष्ट तरीके से उपरोक्त विवेकाधिकार का प्रयोग करना चाहिए। धारा 173 के दूसरे परन्तुक में यह कहा गया है कि न्यायालय को विलंब को केवल तभी क्षमा करने की शक्ति है जब वह संतुष्ट हो कि "पर्याप्त कारण" मौजूद है।

18. इस मोड़ पर, हमें नब्बे दिनों की वैधानिक सीमा से परे अपील की अनुमति देने की विवेकाधीन राहत देने के लिए एक शर्त के रूप में "पर्याप्त कारण" शब्द की व्याख्या करने की आवश्यकता है। यद्यपि इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि मोटर वाहन अधिनियम के अधीन दावों का विनिश्चय करते समय परिसीमा अधिनियम, 1963 के उपबंध लागू नहीं होते हैं, लेकिन यह ध्यान देने योग्य है कि परिसीमा अधिनियम के अधीन "पर्याप्त कारण" की व्याख्या करते हुए भी न्यायालयों ने उदार व्याख्या की है। इस न्यायालय ने एल.

आर. (2008) 8 एस. सी. सी. 321 द्वारा **पेरुमोन भगवती देवस्वम, पेरिनाडू ग्राम बनाम भार्गवी अम्मा** (मृत) के मामले में यह मत व्यक्त किया किः

> "13**. ...शब्द "सीमा की अवधि के भीतर आवेदन न करने का पर्याप्त कारण" को मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और मामले के प्रकार के आधार पर उचित, व्यावहारिक, व्यावहारिक और उदार तरीके से समझा और लागू किया जाना चाहिए।** परिसीमा अधिनियम की धारा 5 में "पर्याप्त कारण" शब्द को एक उदार निर्माण प्राप्त होना चाहिए ताकि पर्याप्त न्याय को आगे बढ़ाया जा सके, जब देरी अपीलकर्ता की ओर से किसी भी टालमटोल रणनीति, सद्भावना की कमी, जानबूझकर निष्क्रियता या लापरवाही के कारण न हो।"

19. बलवंत सिंह (मृत) बनाम जगदीश सिंह, (2010) 8 एस. सी. सी. 685 के मामले में उपरोक्त दृष्टिकोण को दोहराया गया, जिसमें इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया किः

> "25. हम यह कह सकते हैं कि भले ही "पर्याप्त कारण" शब्द को उदार निर्माण प्राप्त करना हो, यह पूरी तरह से संबंधित पक्ष के उचित समय और उचित आचरण की अवधारणा के भीतर आना चाहिए।उदार निर्माण शुरू करने का उद्देश्य आम तौर पर "तर्कसंगतता" की अवधारणा को पेश करना है जैसा कि इसके सामान्य अर्थ में समझा जाता है।
>
> 26. परिसीमा का कानून एक मूल कानून है और इसके किसी पक्ष के अधिकार और दायित्व पर निश्चित परिणाम होते हैं। इन सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए और किसी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर उचित रूप से लागू किया जाना चाहिए। **एक बार जब एक पक्ष के पक्ष में एक मूल्यवान अधिकार अर्जित हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप दूसरा पक्ष पर्याप्त कारण और अपने स्वयं के आचरण को दिखाकर देरी की व्याख्या करने में विफल रहता है, तो आवेदक से केवल पूछने पर उस अधिकार को छीनना अनुचित होगा, विशेष रूप से जब देरी सीधे उस पक्ष की लापरवाही, चूक या निष्क्रियता का परिणाम है।** दोनों पक्षों के साथ समान रूप से न्याय किया जाना चाहिए। तभी न्याय के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। यदि कोई पक्ष अपने अधिकारों और उपचारों को लागू करने में पूरी तरह से लापरवाही करता रहा है, तो दूसरे पक्ष को उस मूल्यवान अधिकार से वंचित करना भी उतना ही अनुचित होगा जो उसके सतर्कतापूर्वक कार्य करने के परिणामस्वरूप उसे कानून में प्राप्त हुआ है।

20. उपर्युक्त मामलों में न्यायालय ने "पर्याप्त कारण" खंड को एक उदार व्याख्या देते हुए "तर्कसंगतता" की अवधारणा को पेश करने के महत्व पर प्रकाश डाला। इसके अलावा, इस न्यायालय ने उन मामलों को अलग करने की आवश्यकता के बारे में आगाह किया है जहां देरी होती है कुछ दिन, उन मामलों के विपरीत जहां देरी अत्यधिक होती है क्योंकि इससे दूसरे पक्ष के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। ऐसे मामलों में, जहां अत्यधिक देरी होती है और यह पार्टी की निष्क्रियता और लापरवाही के लिए जिम्मेदार है, अदालतों को सख्त रुख अपनाना होगा ताकि पार्टियों के महत्वपूर्ण अधिकारों की रक्षा की जा सके।

21. उपरोक्त दृष्टिकोण इस न्यायालय द्वारा मनीबेन देवराज शाह बनाम बृहन्मुंबई नगर निगम, (2012) 5 एस. सी. सी. 157 के मामले में लिया गया था, जिसमें न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था किः

"23. इस बात पर जोर दिए जाने की आवश्यकता है कि भले ही परिसीमा अधिनियम की धारा 5 और इसी तरह के अन्य कानूनों के तहत शक्ति के प्रयोग में एक उदार और न्याय उन्मुख दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है, **अदालतें न तो इस तथ्य से बेखबर हो सकती हैं कि सफल वादी ने चुनौती के तहत निर्णय के आधार पर कुछ अधिकार हासिल किए हैं और मुकदमेबाजी के विभिन्न चरणों में लागत के अलावा बहुत समय लगता है।**

24. किसी दिए गए मामले के तथ्यात्मक मैट्रिक्स में "पर्याप्त कारण" अभिव्यक्ति को क्या रंग मिलेगा, यह काफी हद तक स्पष्टीकरण की प्रामाणिक प्रकृति पर निर्भर करेगा। यदि अदालत को लगता है कि आवेदक की ओर से कोई लापरवाही नहीं की गई है और देरी के लिए दिखाए गए कारण में ईमानदारी की कमी नहीं है, तो वह देरी को माफ कर सकती है। यदि, दूसरी ओर, आवेदक द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण मनगढ़ंत पाया जाता है या वह अपने कारण पर मुकदमा चलाने में पूरी तरह से लापरवाही करता है, तो देरी को माफ नहीं करना विवेक का एक वैध अभ्यास होगा।

22. इसलिए, उपरोक्त प्रावधान एक लाभकारी कानून होने के कारण, इसके उद्देश्य की पूर्ति के लिए उदार व्याख्या दी जानी चाहिए। पार्टियों के वास्तविक अधिकारों को ध्यान में रखते हुए तकनीकी बातों पर अनावश्यक जोर नहीं दिया जाना चाहिए। ऐसे मामलों में मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 या वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 के तहत वाणिज्यिक दावों की तुलना में दाखिल करने और दोबारा दाखिल करने में देरी को सख्ती से नहीं देखा जा सकता है। ***पी. राधाबाई बनाम पी. अशोक कुमार,*** (2019) 13 एससीसी 445 में, जिसमें इस न्यायालय ने मध्यस्थता अधिनियम की धारा 34 की व्याख्या करते हुए अभिनिर्धारित किया कि किसी अधिनिर्णय पर आपत्ति करने का अधिकार मूल रूप से उसमें निर्धारित सीमा अवधि से बंधा हुआ है और ऐसा नहीं किया जा सकता है। वास्तव में न्यायालय ने माना कि एक पूर्ण याचिका, मध्यस्थता अधिनियम की धारा 34 के तहत निर्धारित समय के भीतर दायर की जानी चाहिए और 'उसके बाद नहीं'। न्यायालय ने उपरोक्त निष्कर्ष पर पहुंचते हुए निम्नानुसार तर्क दिया:

''36.1 प्रथम, माध्यस्थम् अधिनियम का उद्देश्य त्वरित विवाद समाधान प्रक्रिया का उपबंध करना था। उद्देश्यों और कारणों के विवरण से पता चलता है कि मध्यस्थता अधिनियम को लागू करने का विधायी उद्देश्य पक्षों को एक कुशल वैकल्पिक विवाद समाधान प्रणाली प्रदान करना था जो वादियों को अदालतों पर बोझ को कम करते हुए विवादों का त्वरित समाधान देता है। अनुच्छेद 34 (3) इस आशय को दर्शाता है जब यह किसी पुरस्कार को चुनौती देने के लिए प्रारंभ और समापन अवधि को परिभाषित करता है। **लोकप्रिय निर्माण मामले में इस न्यायालय [भारत संघ बनाम लोकप्रिय निर्माण कंपनी, (2001) 8 एस. सी. सी. 470] ने मध्यस्थता अधिनियम के तहत निश्चित अवधि के महत्व पर प्रकाश डाला। हम यह भी जोड़ सकते हैं कि अंतिमता मध्यस्थता अधिनियम के तहत निहित एक मौलिक सिद्धांत है और अंतिमता सुनिश्चित करने के लिए एक अधिनिर्णय को चुनौती देने के लिए एक निश्चित समय-सीमा आवश्यक है।** यदि धारा 17 को लागू किया जाना था, तो 120 दिनों के बाद भी एक अधिनिर्णय को चुनौती दी जा सकती है। यह मध्यस्थता अधिनियम के विवादों के त्वरित समाधान

के उद्देश्य को विफल कर देगा। अधिनिर्णय की अंतिमता भी अधर में होगी क्योंकि एक दल 120 दिनों की अवधि के बाद भी अधिनिर्णय को चुनौती दे सकता है।

मोटर वाहन अधिनियम पर वापस आते हुए, विधायी मंशा पीड़ितों के लिए उचित मुआवजा प्रदान करना और उनके मूल अधिकारों की रक्षा करना है, इसकी व्याख्या वाणिज्यिक दावों के अनुसार सख्त नहीं होनी चाहिए जैसा कि ऊपर बताया गया है।

23. निस्संदेह, कानून ने न्यायालयों को देरी को माफ करने के लिए विवेकाधीन शक्तियां प्रदान की हैं, हालांकि साथ ही यह पक्ष पर यह औचित्य साबित करने का दायित्व भी रखता है कि उन्हें "पर्याप्त कारण" के अस्तित्व के कारण इसका पालन करने से रोका गया था।यद्यपि न्यायालयों के लिए विलंब को माफ करने के लिए कोई स्ट्रैट जैकेट फॉर्मूला मौजूद नहीं है, लेकिन न्यायालयों को न केवल मामले के पूरे तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए, बल्कि पक्षों के आचरण को भी ध्यान में रखना चाहिए। तर्कसंगतता की अवधारणा यह निर्धारित करती है कि न्यायालयों को उदार दृष्टिकोण अपनाते हुए भी दोनों पक्षों के अधिकारों और दायित्वों पर विचार करना चाहिए। जब एक पक्ष की घोर लापरवाही और दूसरे के अभावपूर्ण रवैये के कारण एक पक्ष के पक्ष में कोई अधिकार अर्जित हो जाता है, तो यह न्यायालय उपरोक्त विवेकाधीन राहत का प्रयोग करने से बचेगा।

24. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हमारी राय है कि 45 दिनों की देरी को अपीलार्थियों द्वारा ठीक से समझाया गया है, जो अपीलार्थी संख्या 1 की पत्नी की बीमारी के कारण था। उच्च न्यायालय की ओर से केवल अल्प अवधि की देरी के आधार पर अपील को खारिज करना उचित नहीं था, विशेष रूप से मोटर दुर्घटना के दावों में मृत्यु से जुड़े मामलों में।इसके अलावा, वर्तमान मामले में अपीलार्थियों के खिलाफ नब्बे दिनों की समाप्ति के बाद अपील दायर करने के लिए कोई दुर्भावनापूर्ण आरोप नहीं लगाया जा सकता है।इसलिए, हमारी राय है कि विवादित आदेश में लिया गया सख्त दृष्टिकोण अति-तकनीकी है और कानून की नजर में इसे बनाए नहीं रखा जा सकता है।

25. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील की अनुमति दी जाती है और उच्च न्यायालय के विवादित आदेश को अपास्त कर दिया जाता है। चूंकि मामले के गुण-दोष पर निर्णय नहीं हुआ है, इसलिए हम गुण-दोष पर नए सिरे से विचार करने के लिए मामले को उक्त न्यायालय को भेज देते हैं।

26. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपील वर्ष 2014 की है, हम उच्च न्यायालय से अनुरोध करते हैं कि इस आदेश के संचार की तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर इसका निपटान किया जाए।

कल्पना के. त्रिपाठी अपील मंजूर की गई।

1. जस्टिस जी.पी.सिंह इन प्रिंसिपल्स ऑफ स्टैच्युटरी इंटरप्रिटेशन, 14 वीं संस्करण, पृष्ठ 519

2. चिन्नामार्काथियान उर्फ मुथु गौंडर बनाम अय्यवू उर्फ पेरियाना गौंडर, (1982)1 एससीसी 159

3. मदनलाल फकीरचंद दुधेडिया बनाम श्री चांगदेव शुगर मिल्स लिमिटेड, 1962 सप्लीमेंट (3) एससीआर 973

दिब्या कुमारी की देखरेख में, अधिवक्ता सरवजीत सिंह द्वारा अनुवादित।